कविवर बनारसीदास की चतुःशती के अवसर पर विशेष लेख

अर्द्धकथानक[1] : पुनर्विलोकन*

डा० कैलाश तिवारी

प्राचार्य, शास० महाविद्यालय, मझौली

हिन्दी साहित्य में 'अर्द्ध कथानक' को हिन्दी का प्रथम आत्मचरित स्वीकार करते हुए[2] इसके रचनाकार को प्रथम आत्मकथा साहित्य का जन्मदाता भी कहा गया है।[3] साहित्य-इतिहास में इनका उल्लेख मध्यकाल के अन्य कवियों के साथ किया गया है। बनारसीदास ने इतिहास के तीन शासकों—अकबर, जहाँगीर और शाहजहाँ के युग को देखा था। यह भी प्रमाणित है कि उन्हें शाहजहाँ से संरक्षण प्राप्त था।[4] अतः किसी न किसी रूप में इन शासकों की राज्य व्यवस्था और समाज-दशा की झलक 'अर्द्धकथानक' में मिल जायेगी।

'अर्द्धकथानक' के अतिरिक्त लगभग २३ अन्य काव्य-रचनाएँ भी उनकी हैं। इन काव्य रचनाओं का विषय या तो धर्म है या उपदेश[5]। वस्तुतः इन रचनाओं के जरिये उन्होंने जैन-धर्म को सर्वसाधारण के लिए ग्राह्य बनाने का प्रयास किया है और इसके लिए उन्होंने बोलचाल की भाषा का प्रयोग किया है।[6] इन जैसे रचनाकारों के प्रयास के फलस्वरूप ही संस्कृत और प्राकृत के साथ ही साथ जनभाषा में भी जैनधर्म के सिद्धान्तों और केन्द्रीय विचारों को भी प्रस्तुत किया जाने लगा था।[7] इस तरह से उनकी दो उपलब्धियाँ हैं—एक तो जनभाषा के माध्यम से जैनधर्म के सिद्धांतों को लोक-सुलभ बनाना और दूसरा कवि के लिए आत्मकथा लेखन का मार्ग खोलना। यह सत्य है कि बनारसीदास के बाद भी मध्यकाल में किसी कवि या रचनाकार ने आत्म-कथा (लेखन) की ओर ध्यान नहीं दिया था।

हिन्दी रचनाकारों का यह दुर्बल पक्ष ही कहा जायेगा कि उन्होंने अपने व्यक्तिगत-जीवन की (प्रत्यक्ष) जानकारी आत्मकथा के रूप में नहीं दी है। परिणामस्वरूप कवियों के जीवन प्रेरक प्रसङ्गों की जानकारी के लिए हमें उनकी काव्य की अन्तर्धारा पर ही निर्भर रहना पड़ता है। बनारसीदास ने इस लीक से हट 'स्व-चरित' को 'विख्यात' करने की वांछा की है। यह इच्छा (आत्मचरित) अर्द्धकथानक के रूप में आयी है। 'संरक्षण-कवि' होने के नाते उनमें अपने 'चरित' को लिखने की प्रेरणा जागी हो तो कोई आश्चर्य नहीं। उन्होंने जैसा 'सुना' और 'विलोका' वही कह दिया है। इस 'पूरब दसा चरित्र' में 'गुण-दोष' को भी निश्छल भाव से कहा गया है। यह सारा कथन 'स्थूल-रूप' में हा है।

'अर्द्धकथानक' के दो पक्ष हैं—व्यक्ति-पक्ष और समाज-पक्ष। व्यक्ति-पक्ष में कवि ने अपने जीवन-घटनाओं को निरावृत रूप में रखा है। चूंकि कथन के लिए उन्होंने 'थूल रूप' को ही तरजीह दी है, इसलिए उसमें आत्म-गोपन और

---

* 'अर्द्ध-कथानक' मध्यकाल की विशिष्ट कृति हैं—विशिष्ट इस दृष्टि से है कि इसने रचनाकारों में आत्म-चरित लिखने की प्रवृत्ति का श्रीगणेश किया। आत्म-चरित लेखन इतिहास पुरुषों का क्षेत्र नहीं रह गया। भारतीय कवि इस विधा से उस समय अनभिज्ञ होंगे—ऐसा तो नहीं कहा जा सकता पर उनमें आत्म-चरित लेखन के प्रति संकोच भाव हो सकता है। इस संकोच को तोड़ने का काम 'अर्द्धकथानक' करता है। 'अर्द्धकथानक' में सीधी-सपाट तथ्य-बद्ध शैली को अपनाया गया है जिसमें दृश्य-गतिशीलता हैं—संवेदन उद्वेग नहीं। आज भले ही यह रचना-विधि आदर्श न हो पर प्रारम्भिक कृति के लिए आदर्श ही मानी जायेगी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आत्मश्लाघा नहीं है। आत्म-चरित में आत्मश्लाघा से बच निकलना कठिन काम होता है। इस मायने में बनारसीदास मुक्त रहे हैं।

'अर्द्धकथानक' में समाज-पक्ष प्रसंगवश हैं; इसलिए इसमें किसी गम्भीर ऐतिहासिक तथ्य को जान पाना कठिन है—आंशिक रूप में उल्लिखित इतिहास सन्दर्भों में जो भी सूचनाएँ मिलती हैं, उनकी उपयोगिता से इन्कार नहीं किया जा सकता।

आत्मचरित की एक (साहित्यिक) उपलब्धि यह भी है कि हम कवि की अन्तर्दृष्टि से तादात्म्य के साथ ही साथ उसकी रचनाओं से भी परिचित होते हैं। कोई भी लेखक अपनी सृजनात्मक प्राप्तियों का अनुबोध आत्मकथा में अवश्य कराता है। ऐसा होने से किसी भी कवि के मूल्यांकन में सहायता मिलती है।

'अर्द्धकथानक' बनारसीदास की 'निजकथा' है।[८] जिसमें आत्मान्वेषण के स्थान पर आत्म-पीड़ा है; जीवन से जुड़ी स्थितियों की आत्म-स्वीकारोक्ति इसमें है[९]। इन आत्म-स्वीकारोक्तियों को देखकर इस आत्मचरित को 'आधुनिक' आत्मकथा लेखन के निकट मान लिया गया है।[१०] उन्होंने इसमें अपने (व्यापारी) परिवार की आप बीती कही है। इन संयोजित वृत्तों में संयोगवश जग-बीति भी जुड़ गयी है और व्यापारिक यात्राओं में संस्मरण के तौर पर कुछ घटनाओं का इसमें जुड़ना भी जरूरी था। 'संस्मरण' के तौर पर जुड़े 'अर्द्धकथानक' में ये अंश इतिहास सन्दर्भ बन गए हैं।

अर्द्धकथानक में क्या है ?

इसमें रचनाकारों के आधे जीवन की गाथा है। उसने मनुष्य की आयु को एक सौ दस वर्ष माना है—चूंकि इसमें उसने अपने आधी जीवन-यात्रा को समेटा है, इसलिए इस नव-गाथा को 'अर्द्ध कथानक' कहता है; कृति का नाम भी यही रखा गया है।[११]

मूलदास-कथा

प्रारम्भ में वंश परिचय है और उसके बाद स्व-कथा। इनके दादा का नाम मूलदास था और पिता का नाम खरगसेन। दादा मूलदास मुगलों के मोदी थे और उसकी जागीर से उधारी देने का काम करते। संवत् १६०८ में बनारसी दास के पिता खरगसेन का जन्म हुआ।[१२] संवत् १६१३ में मूलदास की मृत्यु हो गयी। मूलदास की सारी सम्पत्ति शासक (मुगल) ने राजसात् कर ली। खरगदास मालवा छोड़कर जौनपुर चले गए।

खरगसेन कथा

खरगसेन अपने मामा मदनसिंघ श्रीमाल के यहाँ पहुँचे। आठ वर्ष की अवस्था होने पर उनकी व्यवसायिक शिक्षा शुरु हुयी।[१३] बाद में सिक्के परखने और रेहन रखने का हिसाब करने लगे। बारह वर्ष की अवस्था में वे बंगाल में लोदी खाँ के दीवान 'धन्ना' राय श्रीमाल के पोतदार बने।[१४] धन्ना की मृत्यु के बाद वे फिर जौनपुर लौटे।

संवत् १६२६ में आगरे में आकर वे सराफी करने लगे, २२ वर्ष की अवस्था में उनका विवाह हुआ। आगरे में चचेरी बहन की ब्याह कर फिर वे वापस जौनपुर लौट आए और साझे में व्यापार करने लगे। संवत् १६४३ में बनारसीदास का जन्म हुआ।

बनारसीदास व्यथा

पिता के समान आठ वर्ष की अवस्था में शिक्षा शुरु हुई और बारह वर्ष (संवत् १६५४) की अवस्था में विवाह।[१५] इसी वर्ष जौनपुर के हाकिम किलीच खाँ ने व्यापारियों से 'बड़ी वस्तु' (भेंट) न मिलने पर जौहरियों को

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कोड़े लगवाए।[16] व्यापारी भाग निकले। खरगसेन सइजादपुर चले गए। किलीच खाँ के आगरे चले जाने पर वे (संवत् १६५६) जौनपुर आए। बनारसीदास ने इसी वर्ष कौड़ी बेचकर व्यापार का शुभारम्भ किया था।

१४ वर्ष की अवस्था तक बनारसीदास ने नाममाला, अनेकार्थ, ज्योतिष और कोकशास्त्र पढ़ डाले और व्यापार छोड़ 'आशिकी' करने लगे। परिणाम—उपदेश। किसी प्रकार रोगमुक्त हुए फिर धर्म आस्था (जैनी) से जुड़े व्यापार से जुड़े।

संवत् १६६४–६७ तक व्यवसाय में घाटा उठाया। पर विभिन्न व्यवसायों से जुड़े रहे। व्यापार के सन्दर्भ में पटना/आगरा की यात्राएँ की। संवत् १६७३ में पिता की मृत्यु के बाद कपड़े का व्यापार किया। अपना हिसाब चुकाने आगरा गए, रास्ते में मुसीबतें झेलीं। यह उनकी अन्तिम यात्रा थी।

बनारसीदास के 'अर्द्धकथानक' से उस काल की कुछ सूचनाएँ मिलती हैं।

अध्यात्मिक गोष्ठियाँ

आगरा में उन दिनों आध्यात्मिक गोष्ठियाँ हुआ करती थीं। बनारसीदास भी ऐसी गोष्ठियों में शामिल होते थे। ये गोष्ठियाँ मुगल दरबार परम्परा की अंग थी। इन गोष्ठियों से अध्यात्म के प्रति रुझान उत्पन्न होता था। ये साधना को सही दिशा देने में असमर्थ रहती थी। बनारसीदास भी भटकाव में उलझे थे।[17] संवत् १६८२ में सही पथ-प्रदर्शक रूपचन्द पाण्डे के कारण उन्हें सही ज्ञान मिला।

इतिहास और समाज

अर्द्धकथानक में ऐतिहासिक सूचनाएँ भी हैं जैसे—अकबर की मृत्यु, जहाँगीर का सिंहासनारूढ़ होना और उसकी मृत्यु; और शाहजहाँ का बादशाह होना ये सभी सूचनाएँ ऐतिहासिक तिथियों की पुष्टि करती हैं।

इसमें अनेक नगरों के नाम हैं पर जौनपुर नगर का विशेष परिचय दिया गया है। मध्यकाल में यह समृद्ध नगर था। बनारसीदास ने जौनासाइ को इस नगर को बसाने वाला कहा।[18] इतिहास के अनुसार सन् १३८९ में इसे फिरोज तुगलक के पुत्र सुल्तान मुहम्मद के दास ने इसे बसाया था।[19] यह दास ही जौनाशाह हो सकता है। 'अर्द्धकथानक' में इसकी भव्यता की सूचना है। यहाँ सतमंजिले मकान, बावन सराय, ५२ परगने; ५२ बाजार और बावन मंडियाँ थीं। नगर में चारों वर्ग के लोग थे। शूद्र छत्तीस प्रकार के थे।

'अर्द्धकथानक' के माध्यम से समाज की हल्की सी झलक मिलती है। जौनपुर नगर-वर्णन में विभिन्न कारीगर-जातियों का जो ब्यौरा है, उससे यही लगता है कि वार्षिक वृत्तियों में लगे लोगों को समाज में नीचा दर्जा दिया गया था—इन्हें शूद्र कहा जाता था। यहाँ तक कि चित्रकार, हलवाई और किसान भी शूद्रों की श्रेणी में आते थे। बनारसीदास ने शूद्रों को जौनपुर में उपस्थित कुछ जातियों (वर्गों) का उल्लेख किया है।[20]

बनारसीदास ने मुगल-शासन-व्यवस्था के दो प्रसंग रखे हैं—किलीच खां[21] द्वारा उगाही और यात्रा के समय मुसीबत में पड़ने पर हाकिमों द्वारा रिश्वत लेना। किलीच खाँ जब जौनपुर का हाकिम बना, तो मनचाही भेंट न मिलने पर जौहरियों को अकारण दण्डित किया।[22] इन दिनों हाकिमों की मनमानी और स्व-इच्छा प्रमुख थी।

जौनपुर से आगरा की यात्रा में नकली सिक्कों के चलाने के अभियोग में बनारसीदास के साथियों को पकड़ा गया। रिश्वत देकर ही उन्हें और उनके साथियों को इस झूठे अभियोग से त्राण मिला था।[23]

समाज में शिक्षा-व्यवस्था परम्परागत ढंग से की जाती थी। व्यापारियों के लिए अधिक पढ़ना-लिखना ठीक नहीं माना जाता था। पढ़ने-लिखने का काम ब्राह्मणों और भाटों के जिम्मे था। व्यापारी का अधिक पढ़ने का अर्थ था भीख माँगना :—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बहुत पढ़ै बामन और भाट। बनिक पुत्र तो बैठे हाट।
बहुत पढ़े सो माँगे भीख। मानहु पूत बड़े की सीख॥ २३/२००

(वर्तमान सन्दर्भ में भी यह कथन आंशिक सही है)

इस काल में व्यापारी लम्बी यात्राएँ करते थे। पर ये यात्राएँ निरापद नहीं थी[२४]। यद्यपि बादशाह यात्राओं और यात्रियों की सुरक्षा-सुविधा का ध्यान रखते थे।[२५] चोर और डाकुओं का भय रहता ही था। खरगसेन लुट चुके थे और कवि स्वयं भी चोरों के गाँव पहुँच गया था।

'अर्द्धकथानक' में आगरे में पहली बार फैले 'गाँठिका रोग' (प्लेग) की बात कही है। गाँठ निकलते ही आदमी मर जाता था। भय के मारे लोग आगरा छोड़कर चले गये थे। बनारसीदास ने भी अजीजपुर गाँव में डेरा जमाया था।[२६] यह घटना संवत् १६७३ की है। तुजुक के जहाँगीरी में भी इसका जिक्र है[२७]। पर उसमें यह नहीं कहा गया है कि आगरे पर भी इसका प्रभाव हुआ था।

'अर्द्धकथानक' से पता चलता है कि बादशाहों की दृष्टि जैन सम्प्रदाय एवम् इनकी उपासना की आजादी के प्रति नरम एवम् उदार थी। दो संघ यात्राओं—हीरानन्द मुकीम, और धन्नाराय की—में जहाँगीर ओर पठान सुलतान ने सहयोग दिया था।[२८]

सन्दर्भ

१. इस निबन्ध के लिखने में 'अर्द्धकथानक' [तृतीय संस्करण], प्रकाशक अखिल भारतीय जैन युवा फेडरेशन, जयपुर का उपयोग किया गया है।
सन्दर्भ उल्लेख में पहले पृष्ठ संख्या और फिर छन्द संख्या दी गयी है।

२. हिन्दी का यह प्रथम आत्मचरित है ही, पर अन्य भारतीय भाषाओं में इस प्रकार की और इतनी पुरानी पुस्तक मिलना आसान नहीं है। बनारसीदास चतुर्वेदी भूमिका पृ० २९।

३. कविवर बनारसीदास : व्यक्तित्व और कर्तृत्व : अध्यात्म प्रभाजैन पृ० ६१।

४. **बनारसीदास,** भूषण, मतिराम, वेदांग राय, हरीनाथ आदि हिन्दी के विद्वान् शाहजहाँ से संरक्षण प्राप्त किए हुए थे। मध्यकालीन भारत : एल० पी० शर्मा पृ० ५०६।

५. हिन्दी साहित्य कोश भाग २, पृ० ३४१।

६. **मध्य देश की बोली बोल।** गर्भित बत कडौं हिय खोल। अर्द्धकथा २/७।

७. हिन्दी साहित्य कोश भाग २, पृ० ३४४।

८. सो बनारसी निज कथा। कहै आप सो आप : अ० कथा० २/३।

९. कहौं अतीत-दोष गुणवाद। वर्तमान नाई मरजाद।
जैसी सुनो बिलोकी नैन। तैसी कछू कहौ मुख बैन २/५।

१०. कविवर बनारसीदास का दृष्टिकोण आधुनिक आत्मचरित लेखकों के दृष्टिकोण से मिलता-जुलता था। बनारसीदास चतुर्वेदी पृ० २९ भूमिका से।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

११. अर्द्धकथा ७४/६६४–६६५ ।

१२. वही० ३/१६ ।

१३. वही० ७/४६, ४७ ।

१४. वही० ८/५६ ।

१५. वही० १३/१०५ ।

१६. वही० १३/११० ।

१७. वही० ६७/६०२, ६०५ ।

१८. कुल पठान जौनासह नाँउ । तिन तहाँ आई बसायो गाऊँ । वही–४/२६ ।

१९. मध्य कालीन भारत : एल० पी० शर्मा, पृ० १५० एवम् १९३ ।

२०. शूद्रों की श्रेणियां—सीसगर, दरजी, तंनोली, रंगबाल, ग्वाल, बाढ़ई, संगतरास, तेली, धोबी, धुनियाँ । कंढोई, कहार, काछो, कलाल, कुलाल (कुम्हार) माली, कुन्दीगर, कागदी, किसान, पट बुनियाँ, चितेरा, बिंधेरा, बारी, लखेरा, उठेरा, राज, पटुवा, छप्परबंध, बाई, भारमुनियाँ, सुनार, लुहार, सिकलीगर, हवाई भर, धीवर, चमार । अ० का ५/२९

२१. किलीच खाँ अकबर का विश्वस्त सेनापति था : अकबरनामा पृ० २८४ में इसका उल्लेख है ।

२२. अ० कथा० १३/१११, ११३ ।

२३. अ० कथा० ६०/५४०, ५४१ ।

२४. (जहाँगीर) शासन व्यवस्था सुदृढ़ और व्यवस्थित नहीं थी । सड़के तथा मार्ग असुरक्षित थे । चोरी और डाके जनी होती थी । प्रांतीय सूबेदार और अधिकारी निर्दयी और अत्याचारी होते थे ।
म० का० भारत : पृ० १९४ शर्मा

२५. आदेशानुसार आगरे से अटक तक मार्ग के दोनों ओर वृक्ष लगाएँ जायें । प्रति कोस पर मील स्तम्भ खड़ा किया जाय; प्रति तीसरे मील पर एक कुआँ तैयार किया जाय, ताकि यात्री लोग सुख शांति से यात्रा कर सकें । तुजुक–ए–जहाँगीरी पृ० २५५ (अनु० मथुरा प्रसाद शर्मा)

२६. इस ही समय ईति बिस्तरी । परी आगरै पहिली मरी ।
जहाँ तहाँ सब भागे लोग । परगट भया गाँठिका रोग ॥ ६३/५७२
निकसै गांठि मरै छिन मांहि । काहू की बसाइ किछु नांहि ।
चूहै भरहि बैद मरि जांहि । भय सौं लोग अंन न दिखाहि ॥ ६४/५७३, ५७४

२७. इसी वर्ष या मेरे राज्यारोहरण (सन् १६११) के दसवें वर्ष हिन्दुस्तान के कुछ स्थानों पर एक बड़ा रोग (प्लेग) फैला । इसका प्रारम्भ पंजाब के परगनों से हुआ था फिर यह सरहिन्द और दोआब तक फैल गया और दिल्ली आ पहुँचा । उसने आसपास के परगनों और गाँवों में फैलकर सबको बरबाद कर दिया । **इस देश में यह बीमारी कभी प्रकट नहीं हुई थी ।** तुजुक–ए–जहाँगीरी : पृ० १६३

२८. अ० कथा० २५/२२४ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org